गोपनीयता के अधिकार पर एक वास्तविक फैसला

साभार : लाइव मिंट **28 अगस्त, 2017**

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-II (शासन व्यवस्था) के लिए महत्वपूर्ण है।

सर्वोच्च न्यायालय ने व्यक्ति की प्राथमिकता की पुष्टि की है और विधायी और कार्यकारी शक्ति पर एक जांच के रूप में सेवा की है।

पिछले हफ्ते गोपनीयता के अधिकार पर सुप्रीम कोर्ट का फैसला एक संवैधानिक व्याख्या के किसी भी रूप का सबसे बेहतर उदाहरण था। नौ न्यायाधीशों की एक बेंच द्वारा यह पढ़ा जाना कि यह मामला संविधान द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकार का ही एक रूप है और यह राज्य के प्रयोजन के रूप में व्यक्ति के सिद्धांत की पुष्टि करता है, नागरिकों में न्यायालय के प्रति विश्वास को कायम रखता है। इस प्रक्रिया में, उन्होंने व्यापक रूप से विधायी और कार्यकारी शक्ति पर जांच के रूप में अपनी संवैधानिक भूमिका को पूर्ण किया है।

देखा जाये तो, इस फैसले के दो महत्वपूर्ण घटक है, जिसमें पहला सिद्धांतीय है। नरेन्द्र मोदी सरकार का यह रुख है कि गोपनीयता का कोई मूल अधिकार नहीं है, सर्वोच्च न्यायालय के दो फैसले अर्थात 1954 में एमपी. शर्मा बनाम सतीश चंद्र, जिला मजिस्ट्रेट, दिल्ली और 1962 में खडक सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, जिसमें उन्होंने उल्लेख किया कि संविधान ने गोपनीयता के अधिकार को विशेष रूप से सुरक्षित नहीं किया है। देखा जाये तो यह अवलोकन सर्वोच्च न्यायालय के तत्कालीन सिद्धांतवादी स्थिति पर आधारित थे, अर्थात् जो कि 1950 में ए.के.गोपालन बनाम मद्रास राज्य मामले के मूलभूत अधिकारों पर आधारित थे। इस स्थिति में यह माना गया कि संविधान के अनुच्छेद 3 के तहत गारंटीकृत मूलभूत अधिकार आपस में एक दूसरे से जुड़े हुए भवन के समान नहीं थे, बल्कि यह एक बेलनाकार भवन के रूप में मौजूद थे।

इसलिए इसके परिणाम बहुत दूर साबित हुए। अनुच्छेद 14, जो कानून के समक्ष समानता की गारंटी देता है, यह सुनिश्चित करता है कि राज्य के कानून स्वभाव या इसके प्रयोग में अनियंत्रित नहीं हो सकते। निश्चित रूप से इसे तर्कसंगत होना चाहिए। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करता है और मौजूदा मामले में याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया है कि यह निहित रूप से गोपनीयता के अधिकार से भी जुड़ा हुआ है। इन संरक्षणों और अधिकारों को ''विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया'' से विवश किया जा सकता है। कथित प्रक्रिया का परीक्षण करने के लिए अनुच्छेद 14 की गारंटीकृत तर्कसंगतता के बिना, अनुच्छेद 21 कमजोर दिखता है।

लेकिन न्यायाधीश के रूप में डी.वाई. चंद्रचूड़ ने अपनी राय में कहा है कि, इस सिद्धांत को वर्ष 1971 के रूस्तम कावसजी कूपर बनाम भारत संघ के फैसले में 11 न्यायाधीशों की पीठ ने अलग कर दिया था। और सात न्यायाधीशों की पीठ ने मेनका गांधी बनाम यूनियन ऑफ इंडिया मामले के फैसले में नए सिद्धांत की स्थापना की, जिसमें अलग-अलग मौलिक अधिकार एक-दूसरे से नहीं जुड़े हुए थे, लेकिन एक दूसरे पर अतिच्छादित थे।

गोपनीयता से संबंधित यह निर्णय इस प्रकार मूलभूत अधिकारों को दिए गए संवैधानिक सुरक्षा की ताकत की पुष्टि करता है। इसका दूसरा घटक दार्शनिक है जो कि दूरगामी प्रतीत होता है।

न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ ने गोपनीयता के अधिकार की आवश्यक प्रकृति को इंगित करने के लिए राजनीतिक विचारों का एक लंबा इतिहास उद्धृत किया है। अरस्तू ने राजनीतिक जीवन के सार्वजनिक क्षेत्र, पोलिश, को व्यक्तिगत क्षेत्र, ओइकोस, से अलग-अलग रूप में पहचाना है। जॉन स्टुअर्ट मिल्स ने अधिक विशिष्ट नियमों और सार्वजनिक क्षेत्र में सीमित राज्य शक्ति में एक समान भेद बताया है। गोपनीयता के अधिकार के बिना इस भेद का अस्तित्व हो ही नहीं सकता। जब राज्य को नागरिकों के जीवन में झाकने का अधिकार होता है, तो वह किसी भी प्रकार से कोई प्रभावी निजी क्षेत्र नहीं हो सकता। यह एक डायस्टोपियन दृष्टि है अर्थात् यह एक मनहूस विचारधारा है। यह व्यावहारिक स्तर पर लोकतांत्रिक संरचनाओं के साथ भी असंगत है। लोकतांत्रिक प्रक्रिया के आधार पर विचार करें, अर्थात् सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार। गुप्त मतदान सार्वजनिक स्थान और राजनीतिक व्यवस्था में गोपनीयता सिद्धांतों का एक विस्तार है। इसके बिना, चुनाव एक मजाक होगा।

इस फैसले में मानवीय गरिमा और जीवन के अधिकार की अवधारणाओं के विकास पर भी ध्यान दिया गया है, दोनों को संविधान द्वारा गारंटी प्रदत्त है। जब कोई नागरिक राज्य और उसकी निजी जिंदगी के बीच सीमा रेखा तय नहीं कर सकता, तो गरिमा को स्पष्ट रूप से प्राप्त करना असंभव है। इसी तरह, पिछली सदी से डेढ़ सालों में, जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार की समझ भौतिक से परे है, जो ''एक अपरिवर्तनीय व्यक्तित्व'' के विचार में विकसित हुई है। जैसा कि न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ का कहना हैं, ''अकेले रहने का अधिकार, जीवन का आनंद लेने के अधिकार का एक अहम् हिस्सा है। जिसका अर्थ यह हुआ कि जीवन का आनंद लेने का अधिकार, व्यक्ति के जीवन के मौलिक अधिकार का एक अहम् हिस्सा है।''

निश्चित रूप से यह निर्णय व्यापक और दूरगामी प्रश्नों का निर्माण करता है। आधार कार्यक्रम के खिलाफ मुकदमेबाजी अभी भी एक अलग मामले के रूप में लंबित पड़ी हुई है और यह फैसला इसे कमजोर बनाएगा, जिससे इस कार्यक्रम के वास्तविक लाभ के वितरण में समस्या आएगी। इस तरह, राज्य के कार्य और प्रक्रिया, जब कानून और व्यवस्था एवं राष्ट्रीय सुरक्षा के मध्य आती हैं तो जांच में बढ़ोतरी होती है। हांलाकि, यह अधिकांशत: अच्छे परिणाम देता है, क्योंकि यहां राज्य का एक लंबा इतिहास रहा है जहां इसने हर बार इस मामले में लापरवाही और जल्दबाजी से काम लिया है। डिजिटल व्यवसाय मॉडल के लिए अधिक व्यापक रूप से और ज्ञान अर्थव्यवस्था के लिए दूरगामी प्रभाव मौजूद हैं। जैसा कि इस आलेख में यह बताया गया है कि इस मामले में बेंच की टिप्पणियां, सूचनात्मक गोपनीयता के लिए प्रस्तावित रूपरेखा पर डिजिटल अर्थव्यवस्था की तेजी से विकसित प्रकृति को ध्यान में नहीं रखता हैं।

अन्य परिणाम निर्विवाद सकारात्मक हैं। यह फैसला महिलाओं के गर्भपात के अधिकारों और निंदनीय धारा 377 को यह बताता है कि लैंगिक अभिमुखता, लिंग पहचान और महिलाओं की शारीरिक स्वायत्तता, मानवीय गरिमा और गोपनीयता के अधिकार से बंधी हुई है। यह महिलाओं और एलजीबीटी (समलैंगिक, गे, उभयलिंगी और ट्रांसजेंडर) समुदाय पर गहरा प्रभाव डालेगा, जो फिर से एक नए पेचीदा सवाल का निर्माण करता हैं। यह निर्णय एक जीवित संविधान के लिए बहस और मूलवाद के खिलाफ तर्क प्रदान करता है। यह अमेरिकी संविधान के वास्तुकार जेम्स मैडिसन का हवाला देते हुए यह बताता है कि जिन्होंने ''नागरिकों के अतुलनीय संपदा अधिकारों के प्रसंग के रूप में नागरिकों की संकायों की सुरक्षा पर विचार किया है।'' यह कहना गलत नहीं होगा कि ये मुद्दे महीने और वर्षों तक कायम रहेंगे। इसलिए जो भी परिणाम प्राप्त हुआ है उसका हमें आने वाले बहसों के लिए एक प्रबुद्ध आधार रेखा की स्थापना के लिए जश्न मनाया जाना चाहिए।

मामले की पृष्ठभूमि

- वर्ष 1954 में एम. पी. शर्मा मामले में 8 जजों की और वर्ष 1962 में खड़क सिंह मामले में 6 जजों की खंडपीठ ने निजता को मौलिक अधिकार नहीं माना था। अत: इसी वर्ष जब इस संबंध में उच्चतम न्यायालय ने सुनवाई आरंभ की तो न्यायालय के नौ जजों की खंडपीठ बैठाई गई।
- दरअसल, सबसे पहले वर्ष 2013 में भारत के सर्वोच्च न्यायालय में आधार की संवैधानिक वैधता को चुनौती देते हुए एक जनहित याचिका दायर की गई थी। न्यायमूर्ति चेलामेश्वर की अध्यक्षता वाली तीन जजों की पीठ ने 11 अगस्त, 2015 को निर्णय दिया कि आधार का इस्तेमाल केवल सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) और एलपीजी कनेक्शनों के लिये ही जाए।
- कुछ ही दिनों के बाद तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश एच.एल दत्तु की अध्यक्षता वाली खंडपीठ ने मनरेगा सहित कई अन्य योजनाओं में आधार के इस्तेमाल की इजाजत दे दी। तत्पश्चात शीर्ष न्यायालय में एक और याचिका दायर की गई कि क्या आधार मामले में निजता के आधार का उल्लंघन हुआ है और क्या निजता एक मौलिक अधिकार है?

हेबस कार्पस मामला

- उच्चतम न्यायालय की 9 जजों की खंडपीठ ने निजता को मौलिक अधिकार बनाने के साथ ही एक और महत्त्वपूर्ण बात कही है। दरअसल, 40 साल पहले एडीएम जबलपुर मामले में शीर्ष न्यायालय ने कहा था कि आपातकाल के दौरान नागरिकों को जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार की गारंटी नहीं दी जा सकती। विदित हो कि इस मामले को हेबस कार्पस मामला भी कहा जाता है।
- वर्ष 1976 में इस मामले में उच्चतम न्यायालय के पाँच न्यायाधीशों में से केवल न्यायमूर्ति एच. आर. खन्ना ने भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश ए. एन. खरे, न्यायमूर्ति एम. एच. बेग, न्यायमूर्ति वाई. वी. चंद्रचूड़ और न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती से अलग राय रखते हुए आपातकाल के दौरान जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार को सुरक्षित रखने की वकालत की थी।
- एच. आर. खन्ना के इस विरोध का जवाब सरकार ने अपने तरीके से दिया और वरिष्ठ होने के बावजूद उनकी जगह न्यायमूर्ति एम. एच. बेग को उच्चतम न्यायालय मुख्य न्यायाधीश बना दिया गया। इसके बाद उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया।
- बहरहाल, न्यायमूर्ति डी. वाई. चंद्रचूड़ जो कि संयोगवश 1976 में फैसला सुनाने वाले जज न्यायमूर्ति वाई.वी. चंद्रचूड़ के पुत्र हैं, ने 1976 के फैसले को स्पष्ट रूप से खारिज कर दिया था और एक अरसे से न्यायालय के दामन पर लगे दाग को धो डाला।
- एडीएम जबलपुर मामले में दिये गए निर्णय को इस खंडपीठ ने दोषपूर्ण करार दिया और कहा कि जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बिना मानव का अस्तित्व असंभव है।
- न्यायालय ने अपने फैसले में कहा है कि ''यह एक व्यक्ति की उसकी पसंद का मामला है कि कौन उसके घर में प्रवेश करता है, वह कैसे रहता है और वह किससे संबंध स्थापित करना चाहता है"।

धारा 377 क्यों है चर्चा में ?

- न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया है कि किसी व्यक्ति का समलैंगिक होना भी उसका अपना निजी मामला है और निजता अब उसका मूल अधिकार है।
- इन परिस्थितियों में पूरी संभावना है कि एलजीबीटी (lesbian, gay, bisexual, and transgender) के हितों के लिये कार्य कर रहे सामाजिक कार्यकर्त्ताओं द्वारा धारा 377 को समाप्त करने की मांग पर फिर से सुनवाई हो।
- दरअसल, आईपीसी की धारा 377 'अप्राकृतिक यौन सम्बन्धों' और 'समलैंगिकता' को परिभाषित करती है और ऐसे संबंध बनाने वालों को आजीवन कारावास तक की सजा दिये जाने की बात करती है।
- विदित हो कि वर्ष 2009 में दिल्ली उच्च न्यायालय ने कहा कि सहमति से बनाये गए समलैंगिक संबंधों को इस धारा के तहत अपराध नहीं माना जा सकता।
- लेकिन दिसंबर 2013 में सर्वोच्च न्यायालय ने दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले को पलटते हुए दोबारा इस धारा को इसके मूल स्वरुप में ला दिया। इसके बाद से ही इस फैसले पर पुनर्विचार की मांग उठती रही है।

संभावित प्रश्न

''हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने निजता मामले में निर्णय सुनाते हुए कुछ महत्वपूर्ण बातों का जिक्र किया। जिसके कारण धारा 377 और आधार कार्यक्रम फिर से चर्चा का विषय बन गया है।'' इस कथन के संदर्भ में बतायें कि शीर्ष न्यायालय का निर्णय आधार कार्यक्रम को किस प्रकार से प्रभावित करेगा? चर्चा करें। (200 शब्द)